National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 646-649

उपेक्षित महाकवि

डॉ0 विजय शंकर मिश्र
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), नई दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

मध्यकाल में रचित एक भी इतिहास–ग्रंथ में जायसी का नामोल्लेख नहीं प्राप्त होता। यदि वे सूफी संत–कवि के रूप में समादृत होते, तो किसी–न–किसी धार्मिक–आध्यात्मिक इतिहास की पुस्तक में उनकी चर्चा अवश्य हुई होती। इतिहासकार बदायुँनी ने अपने से दो सौ वर्ष पहले हुए सूफी कवि मौलाना दाऊद का प्रशस्तिपरक उल्लेख किया है। 'मुंतखिबुत्तवारीख' में चांदायन की प्रशंसा करते हुए उसने लिखा है कि, ''सन 772 हिजरी (1370ई.) में खानेजहाँ, जो फीरोज़शाह का प्रधानमंत्री था, मर गया और उसका लड़का जूनाशाह (या जौनाशाह) उसके पद पर नियुक्त हुआ। 'चंदायन' जो हिन्दी की एक मसनवी है और लोरिक तथा चांदा के प्रेम का वर्णन करती है, उसके लिए मौलाना दाऊद द्वारा रची गई थी। यह इन भूभागों में इतनी अधिक प्रख्यात है कि इसकी प्रशंसा करना अनावश्यक होगा। मख़दूम शेख तक़ीउद्दीन वाइज़ रब्बानी ने एक अवसर पर इससे कुछ अंश पढ़ कर सुनाए, तो इसे सुन कर लोगों को एक अद्भुत आनंद प्राप्त हुआ। जब उस युग के कुछ विद्वानों ने शेख़ से मसनवी को इस प्रकार महत्त्व देने का कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह पूरी रचना ईश्वरीय सत्य तथा संकेतों से भरी हुई थी, रोचक थी, ईश्वर–प्रेमियों और उपासकों को आनंदपूर्ण चिन्तन की सामग्री प्रदान करती थी, कुरान की कुछ आयतों का मर्म स्पष्ट करने में उपयोगी थी और भारत के मधुर गीतों की परिचायिका थी।''[1]

पदमावत की रचना बदायुँनी से कुल पचास वर्ष पहले हुई थी, लेकिन उसने जायसी की कोई चर्चा नहीं की। बदायुँनी ने कालपी के शेख बुरहान का उल्लेख भी किया है। शेख बुरहान अबूफज़्ल की आइने अकबरी में भी उपस्थित है। लेकिन महाकवि जायसी किसी भी ग्रंथ में उल्लिखित नहीं दृष्टिगोचर होते। स्पष्टतया वे ''सूफी संत कवि'' के रूप में स्वीकृत–स्थापित नहीं थे।

आचार्य शुक्ल ने जायसी को सूफी कवि सिद्ध करने के प्रसंग में मसनवी शैली, गुरु–वंदना, स्तुति–खण्ड आदि का हवाला दिया है। साही जी मसनवी–शैली की बात को ''बंजर चर्चा'' कहते हैं। उनके अनुसार ऐसी कोई शैली फारसी या उर्दू में प्रचलन में नहीं है। इसका कोई अस्तित्व नहीं है। वहाँ मसनवी का अर्थ दो–दो मिसरों वाले परस्पर तुकों से जुड़े छंदों से है। वे कहते हैं कि इस भाँति से यदि पदमावत मसनवी है तो रामचरितमानस भी इसी शैली का महाकाव्य है। स्तुति अंश को साही जी 'मंगलाचरण' की शैली में ग्रहण करने को कहते हैं। जायसी ने भिन्न–भिन्न संप्रदायों के अनेक गुरुओं की सूची दी है। वास्तव में वे केवलमात्र सम्मान प्रकट करने का उद्देश्य रखते हैं। जायसी स्वयं किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं थे।

जायसी निस्सन्देह सूफी तसव्वुफ में रुचि रखते होंगे। स्तुति–खण्ड का क्रम सूफी कवियों की परम्परा में आता है। किसी ग़ैर सूफी मुसलमान कवि ने खुदा से ले कर कथा–संकेत तक ऐसे क्रम नहीं रखे। लेकिन रुचि, जानकारी आदि अपनी जगह है और ग्रंथ की कथा अपनी जगह। जायसी ने कथा की जैसी योजना और निरुपण किया है, उसमें सूफी तसव्वुफ की कोई कारगर भूमिका देखने को नहीं मिलती। अधिक–से–अधिक यही कहा जा सकता है कि प्रचलित काव्य शैली के तौर पर रचना में कहीं–कहीं उसका स्पर्श भी अनायास ही हो गया है।

''तन चितउर, मन राजा कीन्हा'' शीर्षक प्रसिद्ध कडवक जायसी को सूफी संत कवि सिद्ध करने के प्रयासों की सम्भवतया सबसे महत्त्वपूर्ण प्रेरणा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पदमावत को समासोक्ति माना है। इस संदर्भ में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है कि जायसी ने समस्त कथा को आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देते हुए इस छंद के माध्यम से अन्योक्ति बतलाया है। ''यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्य अर्थ को ही प्रधान या प्रस्तुत माने तो जहाँ–जहाँ दूसरे अर्थ भी निकलते हैं, वहाँ–वहाँ अन्योक्ति माननी पड़ेगी। पर ऐसे स्थल अधिकतर कथा के अंग है और पढ़ते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो नहीं सकती। अतः इन स्थलों के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत नहीं कह सकते। इस प्रकार वाच्यार्थ के प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ के अप्रस्तुत होने से ऐसी जगह सर्वत्र 'समासोक्ति' ही माननी चाहिए। पदमावत के सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ नहीं हैं, सर्वत्र अन्य पक्ष के व्यवहार का आरोप नहीं है। केवल बीच–बीच में कहीं–कहीं दूसरे अर्थ की व्यञ्जना होती है।... जहाँ–जहाँ प्रबंध–प्रस्तुत–वर्णन में अध्यात्म पक्ष का कुछ अर्थ भी व्यंग्य हो, वहाँ–वहाँ समासोक्ति ही माननी चाहिए।''[2] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने सूफी तसव्वुफ के सूचक इसी रूपक का समुचित निर्वाह नहीं होने के कारण पदमावत को असफल कृति माना था। शुक्ल जी ने प्रबंध काव्य को समासोक्ति सिद्ध किया है। लेकिन वे भी इस कडवक की उपेक्षा नहीं कर सके। यह उनके द्वारा संपादित जायसी–ग्रन्थावली में उपस्थित है–

> तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।
> गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
> नागमती यह दुनिया–धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
> राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।
> प्रेम–कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहू।।[3]

डॉ. माताप्रसाद गुप्त को 1007 हिजरी वाली प्रति में प्रथम बार यह क्षेपक प्राप्त हुआ। उन्होंने इसे प्रक्षिप्त घोषित किया। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल भी इसे जायसी द्वारा विरचित नहीं मानते, इसीलिए उनके द्वारा संपादित 'पदमावत' में यह विद्यमान नहीं है। प्रो. विजयदेव नारायण साही अनुमान लगाते हैं कि संभवतया अठारहवीं शताब्दी के आस–पास यह अनुभव किया जाने लगा होगा कि पदमावत की सूफी व्याख्या संभव हो सकती है। तभी से जायसी को सूफीसंत कवि बनाने के प्रयास आरंभ हुए होंगे। कालांतर में

सूफी–व्याख्या में कठिनाई का अनुभव होने पर इसे रूपक का रूप दे दिया गया। लेकिन समूची कथा में रूपक का निर्वाह असंभव है। अतएव उचित यही है कि या तो समूचे कृतित्व की एकता मान कर इसे अखण्डित दृष्टि से पढ़ा जाए और तसव्वुफ को अंशी के स्थान पर अंश के रूप में स्वीकार किया जाए या फिर माना जाए कि इसमें रूपक का आदि से अंत तक निर्वाह नहीं हो पाया है, इसलिए इस दृष्टि से यह असफल कृति है। पदमावत को असफल काव्य मानने का दृष्टिभ्रम जायसी को सूफी संत मानने की अटल प्रतिज्ञा से पैदा हुआ है। शाहजहाँ के समय फारसी शायर बज़्मी ने पदमावत का फारसी में अनुवाद किया। श्री भगवती प्रसाद सिंह ने इसको हिन्दी में अनूदित किया। इसमें नागमती का विरह–वर्णन नहीं है। इसका कारण इस विरह–वर्णन का सूफी तसव्वुफ की दृष्टि से अनुपयुक्त होना है। इस अनुवाद में अलाउद्दीन का चरित्र उज्ज्वलतर दिखलाया गया है। ऐसे प्रयासों के मिथ्यात्व से जायसी–काव्य के विद्यार्थियों को परिचित होना चाहिए।[4]

प्रसिद्ध है कि शीतला माता के प्रकोप से जायसी का एक नयन और एक श्रवण जाता रहा। उनके मुख में चेचक के गहरे दाग थे। शारीरिक कुरूपता के कारण वे उपहास के पात्र भी बने थे। इस तथ्य को उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है– ''जेइं मुख देखा तेइं हंसा. ..।''[5] स्तुति–खण्ड के अंतिम कडवक में जायसी ने ऐसे संकेत दिए हैं कि जैसे उन्हें पास के अर्थात् जायस के लोगों से समुचित सम्मान नहीं मिला और पदमावत के रस का वे लोग आनंद नहीं उठा पाए। वैसे यह सामान्य उक्ति भी हो सकती है क्योंकि स्वयं अमेठी के राजा रामसिंह उनका बहुत सम्मान करते थे। दोनों ही संभावनाएँ हैं–

कबि बिआस रस कौंला पूरी। दूरिहि निअर भा दूरी।।
निअरहि दूरि फूल सँग काँटा। दूरि जो निअरैं जस गुर चाँटा।।
भँवर आइ बनखंड हुति लेहि कँवल कै बास।
दादुर बास न पावहिं भलेहिं जो आछहिं पास।।[6]

इसमें कोई संदेह नहीं कि जायसी यदि सूफी संत कवि के रूप में स्वीकृत किए गए होते तो उन्हें उपेक्षा और उपहास का पात्र नहीं बनाया गया होता।

प्रो. विजयदेवनारायण साही के मत में जायसी पाठकों को आध्यात्मिक शन्ति प्रदान करने की बात नहीं करते। पदमावत की कहानी 'कलिमलहरनी' नहीं है। कथा के पदर्पण में ''जेहि जस रूप सो तैसेई देखा'' का दावा किया गया है।[7]

मनुष्य के जीवन में यौवनावस्था का महत्त्व स्वयंसिद्ध है। उसे जीवन का स्वर्ण–काल कहा जाता है। जायसी यौवन के कवि हैं। उन्होंने पदमावत में अनेकानेक स्थलों पर यौवन को जीवन का पर्याय मानने के संकेत दिए हैं। पदमावत के अंतिम कडवक में यौवन में गुज़री अनुभूतियों का विशाल सागर हिलोरें मारता दृष्टिगोचर होता है। सब–कुछ समाप्त हो चुकने के बावजूद यौवन की स्मृतियाँ जीवंत रहती हैं। ''यह छवि सूफी संत या चमत्कारी बाबा की नहीं है।''[8]

स्तुति–खण्ड के अंत में महाकवि ने एक–अकेला दावा 'कवि' होने का किया है। वे हृदयस्थ अनुभूतियों को मुक्त करके प्रेमामृतधारा प्रवाहित करने का लक्ष्य रखते हैं। विरहजनित मधुर व्यथा से आप्लावित बैचेन ज़िन्दगी जायसी का अभीप्सित लक्ष्य है। अपनी कृति को उन्होंने रस से भरा कटोरा घोषित किया है। यह रस आँसुओं का है–

हिअ भँडार नग आहि जो पूँजी। खोली जीभ तारा कै कूँजी।।
रतन पदारथ बोलइ बोला। सुरस पेम मधु भरिअ अमोला।।
जेहि के बोल विरह के घाया। कहु तेहि भूख कहाँ तेहि छाया।।
मुहमद कबि जो प्रेम का नातन रकत न मांसु।।
जेइँ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो आए आँसु।।
कबि बिआस रस कौंला पूरी।[9]

पदमावत की कथा ईश्वर से शुरू होकर जायसी पर खत्म होती है। इन क्षणों में रक्त लेई रूपी सृजनात्मक अनुभूति के बीच अलक्षित जायसी और पदमावत की कथा में लक्षित जायसी एकाकार हो कर द्विविध अस्तित्व–बोध की अनुभूति कराते हैं। जायसी यदि सूफी रहे भी होंगे तो ''कुजात सूफी'' होंगे, सरकारी या मठी सूफी नहीं।[10]

हिन्दी आलोचना–जगत ने अज्ञात कारणों से शिरेफ की उस स्थापना को गंभीरता से नहीं लिया जो सूफी दर्शन को पदमावत का प्रधान अंश घोषित करने का निषेध करती है। विजयदेव नारायण साही शिरेफ से सहमत हैं। उनके अनुसार जायसी ने संवेदना को सर्जनात्मकता प्रदान करने की प्रक्रिया में युगीन परम्पराओं और रूढ़ियों, लोकमानस और काव्यशास्त्र, संस्कृत तथा फारसी के कभी संगत तो कभी असंगत तक प्रतीत होने वाले विविध उपादानों, दर्शन और योग का प्रयोग करके भावनात्मक भट्टी में गला कर एक कर दिया। तसव्वुफ का मुहावरा भी एक ऐसा ही उपादान है जो विशिष्ट संदर्भों में भावना को गहराई प्रदान करता है। यह उक्ति की विशिष्टता मात्र है। सूफी तसव्वुफ पदमावत का मूल तत्त्व न हो कर उपलब्ध काव्यात्मक मुहावरे का प्रयोग भर है।''[11]

प्रत्येक बड़ा कवि अपनी अनुभूतियों को रचनात्मक तेवरों से संयुक्त करने के प्रयत्नों में परम्पराओं, युगीन प्रवृत्तियों एवं स्वअर्जित अनुभवों से सहायता लेता है। महाकवि इसीलिए निर्णय देने में सक्षम हो पाता है। इसी निर्णय से उसकी केन्द्रीय संवेदना विराट–व्यापक होती है। साधारण रचनाकार या तो निष्कर्ष रूप में कुछ कहता नहीं और यदि कहता भी है, तो वह पिष्ट–पेषण और चर्वित–चर्वण होता है। उसमें व्यापकता का अभाव होता है। यह बात एक 'गीत' के रचयिता से लेकर तथाकथित महाकाव्यकार तक पर लागू होती है। जायसी वास्तविक अर्थों में 'महाकवि' हैं। उन्होंने भी कथा के माध्यम से सामाजिक व्यवस्थाओं एवं मानवीय जीवन पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनकी अभीप्सित व्यवस्था मनुष्य की भावनाओं के नैसर्गिक स्वरूपों पर अवलंबित नहीं है। वह अनुभूतियों के सहज प्राकृतिक रूपों को बलात् हस्तक्षेप के द्वारा आरोपित उपादानों से सज्जित करने का प्रयास करती है। इसीलिए मौलिक कथा में कल्पित एवं निरूपित समस्त चरित्र अपने–अपने क्षेत्रों में 'महान' नहीं 'महानतम्' हैं। महानतमों द्वारा शासित अतीव मोहक व्यवस्था में औसत मनुष्य अवश्य ही सुख का भोग करता होगा, लेकिन दमित मानसिकता के साथ। वहाँ साधारण की तो बात क्या– 'महान्' सुंदरी नागमती तक 'महानतम्' पदमावती को चुनौती देने पर हाशिए में भेज दी जाती है, सर्वश्रेष्ठता के आसन से फिसलते ही रत्नसेन 'महानतम्' अलाउद्दीन को चुनौती देते ही एकदम बेसहारा छोड़ दिया जाता है। पदमावत की कथा ऐसी व्यवस्था की वकालत करती है। उसमें अन्य उपादानों की भाँति तसव्वुफ से वहीं तक सहायता ली गई है, जहाँ तक वह उपयोगी प्रतीत हुआ। वह प्रबंधकाव्य का केन्द्रीय विषय होना तो दूर, महत्त्वपूर्ण कारक भी नहीं है। पदमावत की कथा जीवन के स्वर्णकाल 'यौवन' पर टिकी हुई है। इसी से उसमें तीव्रतम् उत्तेजना है। सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता पर स्वामित्व इस कथा का एक अन्य स्तंभ है। संसार की विशालतम् सेना इस सत्ता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। अकल्पनीय रूप से रमणीय एवं मारक नारी सौन्दर्य इस कहानी को मादक बनाता है। इस कथा में समूचा

जीवन, सामूहिक शासन और सहज नैसर्गिक रूप समीक्षा का विषय नहीं बनते। स्वाभाविक है कि सूफी अथवा अन्य कोई भी दर्शन–सिद्धान्त पदमावत की कथा की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकता था। जायसी निस्पृह सूफी संत कवि नहीं है। कथा–पुष्प की चिरजीवंत सुगंध के माध्यम से सार्वकालिक 'यश' की प्राप्ति उनका एक काव्य–प्रयोजन है।[12] सरकारी संत बनने से कालजयी कीर्ति की प्राप्ति नहीं होती। वह तो 'महाकवि' को ही प्राप्त होती है।

ऐसा प्रसिद्ध है कि जासयी किसी स्थान शायद गाज़ीपुर से घूमते–फिरते जायस (ज़िला राय बरेली) में आ कर बसे थे। उन्होंने ऐसे स्पष्ट संकेत दिए हैं कि उनका जन्मस्थान कोई और स्थान था–

जायस नगर धरम अस्थानू।
तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।।[13]

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा संपादित 'पदमावत' में ''तहवाँ यह कवि कीन्ह बखानू''[14] पंक्ति है, लेकिन इससे उक्त तथ्य पर प्रभाव नहीं पड़ता। ''आखिरी कलाम'' में उन्होंने कुछ दिनों के लिए अतिथि–रूप में जायस में निवास करने की बात कही है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में वह स्थान किन्हीं कारणों से उन्हें बहुत भाया और जीवनपर्यन्त वे वहीं रहे–

जायस नगर मोर अस्थान। नगर के नावँ आदि उदयानू।।
तहाँ देवस दस पहुँने आएउँ। भा बैराग बहुत सुख पाएउँ।।[15]

हाकवि के जीवन, घर–परिवार आदि के बारे में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। यही प्रतीत होता है कि वे जायस आने से पहले यायावर फकीर की तरह साधारण जीवन यापन करते थे। पदमावत की रचना से पूर्व सामाजिक क्षेत्रों में भी उनकी प्रसिद्धि का कोई प्रमाण नहीं मिलता, बल्कि अंतर्साक्ष्य कुछ और ही बताते हैं। इसलिए उनका सूफी संत कवि होना प्रमाणिक प्रतीत नहीं होता।

साहित्यिक क्षेत्रों में जायसी को सूफी सन्यासी मानने की धारणा का सूत्रपात सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'' और ''जायसी–ग्रंथावली'' की भूमिका में सूफी दर्शन की सुंदर व्याख्या करते हुए 'पदमावत' की सौन्दर्य–प्रेम–विरह–आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता को उसके परिप्रेक्ष्य में 'भी' विश्लेषित किया। महाकाव्य का ''स्तुति खण्ड''[16] भी चांदायन, मृगावती कीतरह सूफी प्रेमाख्यानों की परम्परा का है। इसमें क्रमशः खुदा, पैग़ंबर हजरत मुहम्मद, अबू बक्र–उमर–उसमान–अली चार खलीफाओं, शाहेवक़्त में शेरशाह सूरी, गुरु सैयद अशरफ जहाँगीर की स्तुति की गई है। उन्होंने अनेकानेक गुरुओं–सिद्ध पुरुषों का उल्लेख किया है– सैयद अशरफ जहाँगीर के पुत्र हाजी शेख, उनके दो पुत्रों शेख मुबारक और शेख कमाल, किन्हीं गुरु दानियाल और उनकी शिष्य–परम्परा के सैयद मुहम्मद, अलहदाद, शेख बुरहान, गुरु महदी आदि। इनके अतिरिक्त भी हजरत ख्वाजा खिज्र और सैयद राजे या हामिद शाह सूफी का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जायसी ने अपने रूप–रंग के बारे में भी सूचनाएँ दी हैं। वे अकेले कवि हैं जिन्होंने अपने चार परम इष्ट मित्रों का उल्लेख करके उन्हें अमर कर दिया। इसके उपरांत जायस नगर तथा प्रेमकथा की महिमा वर्णित है। स्तुतिखण्ड के अंतिम कडवक में कथा की रूपरेखा बतलाई गई है। इससे भी उनकी परंपरा उनके सिद्धान्तों के स्पष्ट संकेत देती है।

प्रो. विजयदेव नारायण साही ने जायसी को ''सूफी कवि'' के घेरे में बाँधने का पुरज़ोर विरोध किया है। उनके तर्क पर्याप्त से भी अधिक साधार हैं। उनसे परिचित होना आवश्यक है क्योंकि हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी आज भी 'पदमावत' को सूफी प्रेमपद्धति पर रचित प्रेमकाव्य मान कर ही पढ़ते हैं। शुक्ल जी ने रत्नसेन और पदमावती के पूर्वराग में अस्वाभाविकता के दर्शन किए थे। उन्हें यह खटकने वाली बात लगी। उनके अनुसार इसका कारण ''लौकिक प्रेम और ईश्वर–प्रेम दोनों को एक स्थान पर व्यञ्जित करने का प्रयत्न'' है। ''भगवत्पक्ष में घटाने'' के परिणामस्वरूप ही दोनों का प्रेम ''विषमता से समता'' की ओर बढ़ता है। ग्रंथ की काव्य–शैली में प्रेम की पीर तथा सौन्दर्य–चित्रणों एवं घटनाओं के संयोजन में आध्यात्मिकता के संकेतों को आचार्य ने अपनी मान्यता के प्रमाणों के रूप में प्रस्तुत किया है।[17] साही जी उनसे सहमत नहीं हैं। महाकवि जायसी की समझ को विश्लेषित करने की प्रक्रिया में उन्होंने इस देश में सूफी आंदोलनों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का आग्रह किया है। उनके अनुसार ऐसे संकेतों पर निर्भर रहने से सूफी परम्परा कुछ–एक आन्तरिक तत्त्वों तक संकुचित रह जाती है। यह ठीक नहीं है। भारत का सूफी आन्दोलन सिद्धान्त–चर्चा या व्यक्तिगत साधना या सिद्धि की अवस्था मात्र नहीं था। वह ऐसा सांगठनिक एवं सिलसिलेवार आंदोलन था जिसकी राजनीतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक संघर्ष में विशिष्ट प्रकार की भूमिका थी। इस भूमिका का भिन्न–भिन्न संगठनों ने अपने–अपने विशेष तरीकों से निर्वाह किया। ये सारे संगठन व्यापक तौर पर सुल्तानों–बादशाहों की नीतियों के अंतर्गत चले। साही जी नेइस संदर्भ में कुँअर मोहम्मद अशरफ की मान्यता को असंदिग्ध रूप से महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक माना है। कुँअर साहब के अनुसार सूफी रूढ़िवादी थे। इनका औसत समाजों से आत्मीय रिश्ता कभी भी नहीं बन पाया। उस समय मुस्लिम समाजों के भीतर भी सामाजिक परिवर्तन हो रहे थे। इन बदलावों के प्रति भी सूफी संगठन निरपेक्ष ही रहे। उनमें किसी भी प्रकार की भूमिका निबाहने का प्रयत्न इन्होंने नहीं किया। इसमें कोई संदेह कि ये उदार थे। इसीलिए तुलनात्मक रूप में ये जीवन की सामान्य–सैद्धान्तिक धाराओं से अधिक परिचित तथा आत्मीय थे। इसके बावजूद उन्होंने उलेमाओं का कभी विरोध नहीं किया। उलेमा इस्लाम की कट्टर व्याख्याएँ करते रहे– सूफ़ियों ने उन्हें चुनौती देने का साहस नहीं दिखाया। मन में वे उमरावों का विरोध करते थे, उनसे असंतुष्ट थे– लेकिन विद्रोही स्वर प्रतिध्वनित करने से कन्नी काटते रहे। विरोध करने पर उलेमा और उमराव इन्हें 'काफ़िर' करार कर सकते थे। यह भय इन्हें निरन्तर आतंकित करता रहा। साही जीने बहुमुखी प्रतिभा के विलक्षण उदाहरण अमीर खुसरो का उदाहरण दिया है। खुसरो महत्त्वपूर्ण इतिहासकार थे। उन्होंने 'तारीखे अलाई', 'खजायनुलफतह' सदृश ग्रन्थों में चित्तौड़, पट्टन या अनहिलवाड़ा, दक्षिण, रणथंभौर पर आक्रमणों का ब्यौरा दिया है। वे विविध अभियानों में सुल्तान के साथ रहे थे। उनके द्वारा दिए गए वृत्तांतों में घोर सांप्रदायिक मनोवृत्ति के दर्शन होते हैं। साम्राज्यवादी सत्ता–संघर्षों को खुसरो ने इस्लामी परचम लहराने के तौर पर वर्णित किया है। व्यापक जनसंहार उन्हें विचलित नहीं करता। वे काफिरों के रक्त से पृथ्वी के लाल होने पर हर्ष प्रकट करते हैं। ये 'इतिहासकार' खुसरो हैं। यही अमीर खुसरो जब 'कवि' का बाना धारण करते हैं, तब उनकी वेदना बड़ी मार्मिकता के साथ प्रकट होती है। उनके सोचने के ढ़ंग में बदलाव के साथ स्वरों में आमूलचूल परिवर्तन हो जाता है। हृदय के देश को नाज़ की तलवार से उजाड़ कर वीराने में सुल्तान बनने वाले शासक की वे भर्त्सना करते हैं– ''मुल्के दिल कर दी खराबेज़ तीरे नाज़, व दरीं वीराना सुल्तानी हनोज़।'' वे निज़ामुद्दीन औलिया के पट्ट शिष्य थे। ताकतवर सूफ़ी संगठनों से उनका सीधा संबंध था। इसी संबंध के

कारण उनके इतिहासकार एवं साहित्यकार रूप सम्पूर्णतया परस्पर विरोधी हैं। यह दोहरा चरित्र विवशता का परिणाम हो सकता है, लेकिन यह निश्चित तौर पर सुचिन्तित–सुविचारित–सुनियोजित है। कवि का चोला धारण करने के समय 'मनुष्य' मुखर होता है। इतिहासकार का आवरण ओढ़ते ही साम्प्रदायिक अखाड़ों की नीति बोलने लगती है। अमीर खुसरो दोनों रूपों में ग़ज़ब का संतुलन बनाए रहे और अनेक राजवंशों के सुल्तानों के कृपापात्र बने रह कर निरन्तर उन्नति करते रहे। बरनी, बदायुँनी आदि भी इसी मानसिकता एवं लीक के इतिहासकार थे। सांप्रदायिक संगठनों और दरबारों के तालमेल से निकली सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि इन लेखकों की कलम में बड़ी ताकत से अभिव्यक्त हुई है। दूसरी ओर जायसी अनेक गुरुओं का नामोल्लेख करते हुए भी किसी के चेले नहीं थे। वे किसी सूफी संगठन से भी नहीं जुड़े हुए थे। साथ–ही–साथ वे विशुद्ध दरबारी इतिहासकार भी नहीं थे। प्रो. साही के अनुसार जायसी सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के हाथ में मुट्ठी भर राख थमा कर उसकी पृथ्वी–विजय को झूठी घोषित करते हुए एक गहरी त्रासदी को घटित होते देखते हैं। उनके व्यंग्य में बेहद बेधक विषाद है–

छार उठाइ लीन्हि एक मूँठी। दीन्हि उढ़ाइ पिरथिमी झूठी।।[18]

इसीलिए उनके अनुसार जायसी का 'इस्लाम' दरबारी इतिहासकारों के 'इस्लाम' से अलग है। औरत–मर्दों को जला कर राख करने का वर्णन करते हुए वीराने में इस्लाम के नाम पर शासक बन बैठने को कवि एक विराट त्रासदी मानता है। निस्सन्देह तत्कालीन सूफियों का सांस्कृतिक घेरा जायसी को अपने भीतर समा सकने में असमर्थ था।[19]

मेरी विनम्र राय में आलोचना की विधा को अद्‌भुत कौशल के साथ सर्जनात्मक तेवरों से सजाने और उसे परोपजीवी विधा करार देने वाले शास्त्रियों को धता बताने में समर्थ होते हुए भी साही जी का ध्यान अनेक संदर्भों एवं तथ्यों की ओर नहीं गया। सर्वप्रथम, जायसी दरबारी इतिहासकार नहीं थे। इतिहास के लेखन में प्रतीकात्मकता, लक्षणा–व्यञ्जना, व्यंग्य आदि की शैली नहीं चलती। वह सीधे–सीधे तथ्यों पर रीझता है। इसीलिए उसकी भाषा अभिधात्मक होती है। कविता में अर्थों की व्याख्या करने में बड़ी स्वतंत्रता होती है। इसीलिए उसकी व्याख्याएँ भी भिन्न–भिन्न तरीकों से होती रही हैं। इतिहास–लेखन में शासकों की भर्त्सना पर कोई आवरण नहीं चढ़ाया जा सकता था। इसीलिए अमीर खुसरो ने इतिहास–लेखन के समय अभिधा–शैली अपनाई। काव्य–रचना के क्षणों में उनकी शैली व्यंग्यात्मक हो जाती है। उनका विषाद उभरता है। वे सीधे–सीधे स्वयं सुल्तान पर व्यंग्य करते हैं। इसके विपरीत समूचे पदमावत में जायसी न तो स्वयं और न ही उनका कोई पात्र अलाउद्दीन की किसी तरह की भर्त्सना करते हैं। ऊपर दिए गए उदाहरण में 'प्रेमसाधक' का बाना ओढ़े स्वयं सुल्तान दुःख व्यक्त करता है। इस तीव्र शोकानुभूति के तुरंत बाद समस्त स्त्री–पुरुषों को मौत के घाट उतारने वाला भीषण युद्ध हुआ और चित्तौड़ इस्लामी परचम तले आ गया–

''जौहर भईं इस्तिरी पुरुख भए संग्राम।
पातसाहि गढ़ चूरा चितउर भा इसलाम।।[20]

पदमावत में अलाउद्दीन खिल्जी की तथाकथित वेदनानुभूति उसे ''भावुक व्यक्ति'' सिद्ध कर रही है, न कि घटिया आदमी या नरपिशाच। दूसरे, इसके एकदम तुरंत पश्चात् कवि अन्य चरित्रों के साथ इस सारी विभीषिका के कामुक ज़िम्मेदार सुल्तान को भावभीनी श्रद्धांजली प्रदान करता है। उसकी 'कहानी' के बने रहने के संकेत देता है। सुगंधित कीर्ति अथवा सूक्ष्म रूप में उसके अमर होने की भविष्यवाणी करता है। ऐसा क्यों है? यदि अलाउद्दीन खिल्जी के नृशंस साम्राज्यवादी अभियान में जायसी विराट त्रासदी को घटित होता देख रहे थे, तो उसके प्रति ठीक वही भावना क्यों प्रदर्शित करते हैं जो रत्नसेन और पदमावती आदि के प्रति है। उसे शाश्वत सुगंध विकीर्ण करने वाला पुष्प कहने के पीछे क्या अभिप्राय है? इतिहासों में अलाउद्दीनों की उपस्थिति एक 'सत्य' है, लेकिन उसे महिमामंडित करने का तर्क क्या है? तीसरे, उनहोंने रत्नसेन, पदमावती, हीरामन, अलाउद्दीन, राघव चेतन अर्थात् सबकी भावभीनी स्मृति की है, सबको अपनी भरपूर संवेदना प्रदान की है। ऐसे में उनकी कवित्व–प्रतिभा की सर्वोत्कृष्ट उद्‌घोषिका चिर विरहिणी' नागमती कहाँ खो गई? उसे उन्होंने ऐसे नाजुक समय में विस्मृत कैसे कर दिया? क्या इस पुष्प में कोई सुंगध नहीं है?

कहाँ सो रतनसेनि अस राजा। कहाँ सुवा असि बुधि उपराजा।
कहाँ अलाउदीन सुलतानू। कहँ राघौ जेइँ कीन्ह बखानू।।
कहँ सुरूप पदुमावति रानी। कोइ न रहा जग रही कहानी।।
धनि सो पुरुख जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न बासू।।
केइँ न जगत जस बेंचा केइँ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढै कहानी हम सँवरै दुइ बोल।।[21]

इसका मूलभूत कारण नागमती का 'सर्वोत्तमों' के समूह से फिसल कर नीचे गिरते हुए 'उत्तमों' मात्र के वर्ग में आ जाना प्रतीत होता है। कथा से बहिष्कृत नहीं होते हुए भी वह महाकवि का स्थायीभाव नहीं है। अभी चर्चा जायसी के ''सूफी कवि'' होने–नहीं होने से संबद्ध है, इसलिए इन समस्त बिन्दुओं पर अवसर आते ही विस्तृत विचार करने का प्रयत्न करूँगा। अस्तु। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि जायसी एकांत सूफी कवि होते, तो पदमावत की कथा–योजना इस मत के संगठनों की भूमिकाओं जैसी ही संकुचित और दरबारी किस्म की ही होती।

संदर्भ

1. रेयर फ्रैंगमेन्ट्स ऑफ चंदायन एण्ड मृगावती, एस.एच.अस्करी, पृष्ठ 7
2. जायसी–ग्रंथावली की भूमिका, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 56 से 58
3. वही, पृष्ठ 301
4. जायसी, विजयदेव नारायण साही, पृष्ठ 29–30, 54
5. पदमावत, 23/1
6. वही, 24/6–7, 1/24
7. जायसी, विजयदेव नारायण साही, पृष्ठ 47–48
8. वही, पृष्ठ 49–50
9. पदमावत, 23/4 से 7, 1/23, 24/6
10. जायसी, विजयदेव नारायण साही, पृष्ठ 34–35
11. वही, पृष्ठ 51–52
12. पदमावत, 652/3
13. पदमावत, 652/7
14. वही, 23/1
15. आखिरी कलाम, 10/1–2
16. पदमावत, 1 से 23
17. जायसी–ग्रंथावली की भूमिका, रामचन्द्र शुक्ल
18. पदमावत, 651/4
19. जायसी, विजयदेव नारायण साही, पृष्ठ 55 से 61
20. पदमावत, 651/57/7
21. वही, 652/4 से 7, 58/1